International Journal of Science, Strategic Management and Technology
Volume **02** Issue **09** September-2026 | ISSN: **3108-1762 (Online)** | Impact Factor: 3.8
An International, Peer-Reviewed, Open Access Scholarly Journal Indexed in recognized academic databases

अभिराजयशोभूषणम् में काव्यस्वरूप का समीक्षात्मक अनुशीलन

गौरव त्रिपाठी
शोधार्थी
वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर
प्रो. (डॉ.) वंदना द्विवेदी
नवयुग कन्या महाविद्यालय, लखनऊ

https://doi.org/10.55041/ijsmt.v2i9.004

Cite this Article: त्रिपाठी, □. (2026). अभिराजयशोभूषणम् में काव्यस्वरूप का समीक्षात्मक अनुशीलन. International Journal of Science, Strategic Management and Technology, *02*(9), 1-9. https://doi.org/10.55041/ijsmt.v2i9.004

License: This article is published under the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY 4.0), permitting use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original author(s) and source are properly credited.

सारांश

संस्कृत काव्यशास्त्र की सुदीर्घ परम्परा में काव्य के स्वरूप, प्रयोजन, हेतु, आत्मतत्त्व, गुण-दोष, अलंकार, रस एवं ध्वनि के सम्बन्ध में निरन्तर चिन्तन होता रहा है। भामह के शब्दार्थ-साहित्य से आरम्भ होकर वामन की रीति, आनन्दवर्धन की ध्वनि, कुन्तक की वक्रोक्ति, मम्मट के गुण-दोष-समन्वित शब्दार्थ, विश्वनाथ के रसात्मक वाक्य तथा पण्डितराज जगन्नाथ के रमणीयार्थ-प्रतिपादक शब्द तक काव्य की अवधारणा क्रमशः विकसित और विस्तृत होती रही। आधुनिक संस्कृत साहित्य में नवीन रचना-विधाओं, नवीन संवेदनाओं तथा परिवर्तित सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों ने परम्परागत काव्यशास्त्रीय प्रतिमानों के पुनर्विचार की आवश्यकता उत्पन्न की। इसी आवश्यकता की समन्वयात्मक परिणति आचार्य अभिराज राजेन्द्र मिश्र विरचित **'अभिराजयशोभूषणम्'** में दिखाई देती है। सन् 2006 में प्रकाशित इस ग्रन्थ में 567 कारिकाओं के माध्यम से परम्परागत संस्कृत काव्यशास्त्र का आधुनिक सन्दर्भों में पुनर्विचार प्रस्तुत किया गया है।[1]

प्रस्तुत शोध-पत्र में अभिराजयशोभूषणम् में प्रतिपादित काव्यस्वरूप का समीक्षात्मक अनुशीलन किया गया है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि अभिराज की काव्य-दृष्टि किसी एक प्राचीन काव्यशास्त्रीय सम्प्रदाय तक सीमित न होकर शब्द और अर्थ के साहचर्य, रसगर्भता, लोकोत्तरता, प्रतिभा, गुण, अलंकार, नवोन्मेष तथा आस्वादक की भूमिका को व्यापक धरातल पर समन्वित करती है। विशेषतः सहृदयास्वाद्य, कोविदास्वाद्य और लोकास्वाद्य—इस त्रिविध काव्य-विभाजन के माध्यम से अभिराज काव्य की सत्ता को केवल रचना तक सीमित न रखकर उसके ग्रहण और आस्वाद तक विस्तृत करते हैं। फलतः अभिराजयशोभूषणम् आधुनिक संस्कृत काव्यशास्त्र में परम्परा और आधुनिकता के मध्य एक महत्त्वपूर्ण सेतु के रूप में सामने आता है।

कूटशब्द : अभिराजयशोभूषणम्, अभिराज राजेन्द्र मिश्र, काव्यस्वरूप, संस्कृत काव्यशास्त्र, रस, लोकोत्तरता, प्रतिभा, सहृदय, काव्यास्वाद, आधुनिक संस्कृत साहित्य।

© Author(s). This work is peer-reviewed, openly published, and permanently archived
This article is openly accessible and reusable with proper attribution.

प्रस्तावना

भारतीय साहित्यिक चिन्तन में काव्य को केवल मनोरंजन का माध्यम नहीं माना गया है। काव्य मानवीय संवेदना, अनुभूति, कल्पना, बुद्धि एवं सौन्दर्यबोध की ऐसी कलात्मक परिणति है जिसके माध्यम से साधारण जीवनानुभव भी एक विशिष्ट सौन्दर्यात्मक अनुभूति का रूप ग्रहण कर लेता है। इसीलिए संस्कृत काव्यशास्त्र के आचार्यों ने केवल अलंकार, गुण, रीति अथवा रस के विवेचन तक स्वयं को सीमित नहीं रखा, अपितु बार-बार इस मूल प्रश्न पर विचार किया कि **काव्य का वास्तविक स्वरूप क्या है?** आचार्य भामह ने काव्य की आधारभूत सत्ता को शब्द और अर्थ के संयुक्त रूप में स्वीकार करते हुए कहा—

"शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्।"[2]

यह परिभाषा संस्कृत काव्यशास्त्र में एक महत्त्वपूर्ण आधार बनी। इसके पश्चात् दण्डी ने अभीष्ट अर्थ को व्यक्त करने वाली पदावली को काव्य-शरीर से सम्बद्ध किया।[3] वामन ने विशिष्ट पदरचना को 'रीति' कहा तथा **"रीतिरात्मा काव्यस्य"** की स्थापना की।[4] आनन्दवर्धन ने ध्वनि को काव्य की आत्मा माना,[5] जबकि कुन्तक के लिए वक्रोक्ति ही काव्य का जीवित तत्त्व है।[6] आचार्य मम्मट ने पूर्ववर्ती मतों का समन्वय करते हुए दोषरहित, गुणयुक्त तथा अलंकारसम्पन्न शब्दार्थ में काव्यत्व की प्रतिष्ठा की।[7] विश्वनाथ कविराज ने रस को निर्णायक महत्त्व देते हुए प्रसिद्ध सूत्र प्रस्तुत किया—

"वाक्यं रसात्मकं काव्यम्।"[8]

पण्डितराज जगन्नाथ ने काव्य की रमणीयता को प्रधानता देते हुए कहा—

"रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्।"[9]

इन परिभाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन यह दर्शाता है कि भारतीय काव्यशास्त्र में काव्य का स्वरूप कभी स्थिर एवं अपरिवर्तनीय नहीं रहा। प्रत्येक युग और प्रत्येक आचार्य ने साहित्यिक अनुभव की किसी विशेष सत्ता को प्रधानता देते हुए काव्य की अवधारणा का विस्तार किया। आधुनिक युग में संस्कृत साहित्य की रचना-प्रवृत्तियों में व्यापक परिवर्तन हुआ है। महाकाव्य, खण्डकाव्य, नाटक और चम्पू जैसी परम्परागत विधाओं के साथ आधुनिक कविता, मुक्तछन्द, गीत, ग़ज़ल, लघुकथा, एकांकी तथा अनेक नवीन साहित्यिक रूप संस्कृत में विकसित हुए। परिणामतः आधुनिक संस्कृत काव्यशास्त्र के सम्मुख यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि क्या प्राचीन शास्त्रीय प्रतिमान आधुनिक साहित्यिक रूपों को उसी प्रभावशीलता से व्याख्यायित कर सकते हैं अथवा उनमें पुनर्विचार और विस्तार आवश्यक है। इसी पृष्ठभूमि में आचार्य अभिराज राजेन्द्र मिश्र का अभिराजयशोभूषणम् अत्यन्त महत्त्वपूर्ण काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ के रूप में प्रतिष्ठित होता है। ग्रन्थ में परम्परागत काव्यशास्त्र का निषेध नहीं किया गया, अपितु उसके आधारभूत सिद्धान्तों की आधुनिक साहित्यिक परिस्थितियों में पुनर्व्याख्या की गई है। आधुनिक संस्कृत काव्यशास्त्र के विश्वविद्यालयीय अध्ययन में भी इस ग्रन्थ को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है।[10]

अभिराज राजेन्द्र मिश्र और आधुनिक संस्कृत काव्यशास्त्र

आचार्य अभिराज राजेन्द्र मिश्र आधुनिक संस्कृत साहित्य के उन विरल साहित्यकारों में हैं जिनका योगदान केवल रचनात्मक साहित्य तक सीमित नहीं है। कविता, नाटक, कथा और अन्य आधुनिक संस्कृत विधाओं के साथ काव्यशास्त्रीय चिन्तन में भी उनका विशिष्ट योगदान है। वे संस्कृत साहित्य की परम्परा के गहरे अध्येता होते हुए भी नवीन रचनात्मक प्रवृत्तियों के प्रति सजग रहे।

© Author(s). This work is peer-reviewed, openly published, and permanently archived
This article is openly accessible and reusable with proper attribution.

अभिराजयशोभूषणम् की विशेषता इसी द्वन्द्वात्मक समन्वय में निहित है। एक ओर उसमें भरत, भामह, दण्डी, वामन, आनन्दवर्धन, अभिनवगुप्त, कुन्तक, मम्मट, विश्वनाथ तथा जगन्नाथ जैसे परम्परागत आचार्यों की वैचारिक विरासत उपस्थित है, दूसरी ओर आधुनिक साहित्यिक विधाओं की समस्याओं पर भी विचार किया गया है।

ग्रन्थ पाँच उन्मेषों—**परिचयोन्मेष, शरीरतत्त्वोन्मेष, आत्मतत्त्वोन्मेष, निर्मितितत्त्वोन्मेष तथा प्रकीर्णतत्त्वोन्मेष**—में विन्यस्त है।[11] यह विभाजन स्वयं अभिराज की समग्र काव्य-दृष्टि को संकेतित करता है। काव्य का शरीर है, उसकी आत्मा है, उसकी निर्मिति की प्रक्रिया है तथा उसके विविध सहायक तत्त्व भी हैं। अतः काव्य किसी एक तत्त्व का परिणाम नहीं, बल्कि अनेक तत्त्वों की कलात्मक सहक्रिया है।

अभिराजयशोभूषणम् में काव्य का लक्षण

अभिराज राजेन्द्र मिश्र ने काव्य के स्वरूप को प्रस्तुत करते हुए कहा है—

"काव्यं लोकोत्तराख्यानं रसगर्भस्वभावजम्।
परत्रेह च निर्व्याजं यशोऽवाप्तिप्रयोजनम्॥"[12]

इस कारिका में अभिराज की सम्पूर्ण काव्यदृष्टि के अनेक महत्त्वपूर्ण तत्त्व अन्तर्निहित हैं। इसमें 'काव्य', 'लोकोत्तर', 'आख्यान', 'रसगर्भ', 'स्वभावज' और 'यशोऽवाप्ति' जैसे पद केवल पारिभाषिक संकेत नहीं हैं, बल्कि एक विस्तृत सौन्दर्यशास्त्रीय दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करते हैं। अभिराज का काव्यलक्षण न तो केवल शब्द को काव्य मानता है, न केवल अर्थ को, न केवल अलंकार अथवा रस को। उनके लिए काव्य वह कलात्मक अभिव्यक्ति है जो सामान्य भाषिक संप्रेषण से ऊपर उठकर लोकोत्तर अनुभव प्रदान करती है तथा जिसके भीतर रसात्मक सम्भावना विद्यमान रहती है।

शब्द और अर्थ का सहभाव

संस्कृत काव्यशास्त्र में शब्द और अर्थ का सम्बन्ध अत्यन्त प्राचीन विमर्श का विषय रहा है। केवल शब्द को काव्य मानने पर अर्थ की अनिवार्यता का प्रश्न उपस्थित होता है और केवल अर्थ को काव्य मानने पर उसकी भाषिक अभिव्यक्ति का। अतः भामह द्वारा प्रस्तुत शब्दार्थ-साहित्य की धारणा ने काव्य के समग्र स्वरूप को समझने की दिशा प्रदान की। अभिराज भी काव्य को शब्द और अर्थ की संयुक्त कलात्मक सत्ता के रूप में स्वीकार करते हैं। शब्द अर्थ को अभिव्यक्ति प्रदान करता है और अर्थ शब्द को सार्थकता। दोनों में से किसी एक की अनुपस्थिति में काव्यानुभव सम्भव नहीं होता। तथापि केवल शब्द और अर्थ का यांत्रिक संयोग भी काव्य नहीं है। सामान्य व्यवहार में भी प्रत्येक कथन शब्द और अर्थ से निर्मित होता है। इसलिए साहित्यिक शब्दार्थ और सामान्य शब्दार्थ में कोई अतिरिक्त गुण होना आवश्यक है।

अभिराज के यहाँ यही अतिरिक्त सत्ता 'लोकोत्तरता', 'रसगर्भता', 'गुण', 'अलंकार' तथा 'नवोन्मेष' के माध्यम से अभिव्यक्त होती है। इस प्रकार वे भामह की शब्दार्थ-परम्परा को स्वीकार करते हुए उसमें आधुनिक सृजनात्मकता का नया आयाम जोड़ते हैं।

© Author(s). This work is peer-reviewed, openly published, and permanently archived
This article is openly accessible and reusable with proper attribution.

लोकोत्तरता : काव्यत्व का विशिष्ट तत्त्व

अभिराज के काव्यलक्षण में **'लोकोत्तर'** पद विशेष महत्त्व का है। यहाँ लोकोत्तर का आशय लोक से विमुख, अदृश्य अथवा चमत्कारिक जगत् से नहीं है। काव्य का मूल पदार्थ लोक से ही प्राप्त होता है। प्रेम, वियोग, प्रकृति, संघर्ष, मृत्यु, आशा, निराशा, सामाजिक सम्बन्ध, इतिहास और मानवीय अनुभूतियाँ लोक से सम्बद्ध हैं। किन्तु कवि इनका ऐसा कलात्मक रूपान्तरण करता है कि सामान्य अनुभव विशिष्ट सौन्दर्यानुभव बन जाता है। यही रूपान्तरण काव्य की लोकोत्तरता है। कवि और सामान्य व्यक्ति एक ही सूर्यास्त देख सकते हैं, किन्तु सामान्य व्यक्ति जहाँ केवल एक प्राकृतिक घटना देखता है, कवि उसी दृश्य में क्षणभंगुरता, विरह, सौन्दर्य अथवा जीवन-दर्शन का अनुभव कर सकता है। जब यह अनुभूति कलात्मक शब्दविधान में रूपान्तरित होती है तब साधारण दृश्य काव्यगत लोकोत्तरता ग्रहण करता है।

अभिराज की यह अवधारणा जगन्नाथ की 'रमणीयता' से सम्बन्ध स्थापित करती है। जगन्नाथ के अनुसार रमणीय अर्थ का प्रतिपादन करने वाला शब्द काव्य है।[13] अभिराज इस रमणीयता को रस, गुण, प्रतिभा एवं नवोन्मेष से सम्बद्ध करते हुए 'लोकोत्तरता' के व्यापक धरातल पर स्थापित करते हैं।

रसगर्भता और काव्य का अन्तःसौन्दर्य

अभिराज काव्य को **'रसगर्भ'** कहते हैं। 'रसगर्भ' पद का प्रयोग अत्यन्त सूक्ष्म अर्थ रखता है। विश्वनाथ ने 'रसात्मक वाक्य' को काव्य माना था, जबकि अभिराज 'रसगर्भता' की बात करते हैं।[14] 'रसात्मक' शब्द जहाँ काव्य में रस की प्रत्यक्ष उपस्थिति की ओर संकेत करता है, वहीं 'रसगर्भ' काव्य के भीतर अन्तर्निहित आस्वादात्मक सम्भावना का बोध कराता है। इसका अर्थ यह है कि प्रत्येक उत्कृष्ट काव्य में संवेदना, अनुभूति अथवा सौन्दर्यानुभव की कोई न कोई ऐसी क्षमता होनी चाहिए जो सहृदय को प्रभावित कर सके। आधुनिक कविता में कई बार परम्परागत विभाव-अनुभाव-सञ्चारी की संरचना स्पष्ट रूप में उपलब्ध नहीं होती। मुक्तछन्द, प्रतीकात्मक कविता और वैचारिक कविता में रस का स्वरूप अपेक्षाकृत अन्तर्निहित हो सकता है। 'रसगर्भता' की अवधारणा ऐसे साहित्य को भी काव्यशास्त्रीय परिधि में स्थान प्रदान करती है। अतः अभिराज का यह पद प्राचीन रस-सिद्धान्त का निषेध न होकर उसका आधुनिक विस्तार है।

काव्य की स्वभावजता

काव्यलक्षण में प्रयुक्त **'स्वभावजम्'** पद अभिराज की कवि-प्रतिभा सम्बन्धी अवधारणा को स्पष्ट करता है। काव्य केवल शास्त्रीय नियमों के अभ्यास से उत्पन्न होने वाली यांत्रिक रचना नहीं है। छन्द, व्याकरण, अलंकार और शास्त्र का ज्ञान कवि के लिए उपयोगी हो सकता है, परन्तु वास्तविक सृजनात्मक चेतना का मूल स्रोत प्रतिभा है।

संस्कृत काव्यशास्त्र में प्रतिभा को पूर्ववर्ती आचार्यों ने भी महत्त्व दिया है। राजशेखर तथा मम्मट आदि ने प्रतिभा, व्युत्पत्ति और अभ्यास के विविध सम्बन्धों पर विचार किया।[15] अभिराज इस परम्परा को स्वीकार करते हुए प्रतिभा को मूल सृजनात्मक शक्ति मानते हैं, जबकि व्युत्पत्ति और अभ्यास को उसके परिष्कार एवं विकास में सहायक तत्त्व माना जा सकता है।

इस प्रकार 'स्वभावज' का अर्थ यह नहीं है कि काव्य-सृजन के लिए साधना अथवा अध्ययन निरर्थक है, बल्कि यह कि केवल अभ्यास से कवि-प्रतिभा उत्पन्न नहीं की जा सकती। अभ्यास प्रतिभा को दिशा देता है, किन्तु प्रतिभा उसका मूल बीज है

© Author(s). This work is peer-reviewed, openly published, and permanently archived
This article is openly accessible and reusable with proper attribution.

काव्य में गुण, दोष और अलंकार

अभिराज की काव्य-दृष्टि में गुण, दोष और अलंकार की परम्परागत अवधारणाओं का भी महत्त्व है। किन्तु वे इन्हें काव्यत्व का एकमात्र आधार नहीं मानते। अलंकार काव्य को सौन्दर्य प्रदान करता है, परन्तु केवल अलंकारों का संचय किसी रचना को उत्कृष्ट कविता नहीं बना देता। उसी प्रकार दोषरहित भाषा भी काव्य होने की पर्याप्त शर्त नहीं है। व्याकरणसम्मत और शुद्ध वाक्य सामान्य व्यवहार में भी सम्भव है।

काव्य की वास्तविक उपलब्धि तब होती है जब शब्दार्थ की संरचना में गुण, रस, अलंकार और सृजनात्मक नवीनता स्वाभाविक रूप से अन्तर्भूत हों। अभिराज की दृष्टि इस अर्थ में समन्वयवादी है कि वे किसी एक तत्त्व को काव्य की पूर्ण सत्ता नहीं मानते।

नवनवोन्मेषशीलता और आधुनिक काव्य

अभिराज की काव्यदृष्टि का सर्वाधिक आधुनिक पक्ष नवीनता की स्वीकृति है। कविता केवल पुराने रूपों, कथानकों, उपमानों और छन्दों की पुनरावृत्ति मात्र नहीं हो सकती। कवि-प्रतिभा का स्वभाव ही नया देखना और नया व्यक्त करना है। संस्कृत साहित्य के प्राचीन सिद्धान्त में प्रतिभा को 'नवनवोन्मेषशालिनी प्रज्ञा' के रूप में समझने की परम्परा रही है।[16] अभिराज इस तत्त्व को आधुनिक साहित्यिक सन्दर्भ में पुनः सक्रिय करते हैं। यदि काव्य प्रत्येक युग में समान रूप और समान शैली में लिखा जाए तो साहित्य की जीवित परम्परा जड़ हो जाएगी। इसलिए नवीन विधाओं और नवीन अभिव्यक्तियों को स्थान देना स्वयं काव्य की प्रकृति की माँग है।

काव्यास्वाद का त्रिविध स्वरूप

अभिराज की काव्य-दृष्टि में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मौलिक स्थापना काव्य के आस्वाद का त्रिविध वर्गीकरण है—

"काव्यं सहृदयास्वाद्यं कोविदास्वाद्यमेव च।
लोकास्वादमिति ख्यातं त्रिविधं रोचते मम॥"[17]

इस कारिका में काव्य को तीन रूपों में समझाया गया है—

1. **सहृदयास्वाद्य काव्य**
2. **कोविदास्वाद्य काव्य**
3. **लोकास्वाद्य काव्य**

यह वर्गीकरण संस्कृत काव्यशास्त्र में काव्य के स्वरूप को केवल रचना और रचनाकार के स्तर पर न रखकर पाठक और आस्वादक तक विस्तृत करता है।

सहृदयास्वाद्य काव्य

सहृदय वह पाठक है जिसकी संवेदनशीलता साहित्यिक संस्कार से परिष्कृत है। वह शब्द के प्रत्यक्ष अर्थ से आगे उसके व्यंग्यार्थ, भावार्थ और सौन्दर्यात्मक संकेतों को ग्रहण करने में समर्थ होता है।

© Author(s). This work is peer-reviewed, openly published, and permanently archived
This article is openly accessible and reusable with proper attribution.

आनन्दवर्धन और अभिनवगुप्त की परम्परा में सहृदय का महत्त्व पहले से स्वीकार किया गया था।[18] अभिराज इस संकल्पना को आधुनिक साहित्यिक आलोचना में पुनः प्रतिष्ठित करते हैं।

कोविदास्वाद्य काव्य

कोविद अर्थात् शास्त्रज्ञ अथवा काव्यमर्मज्ञ। ऐसा पाठक साहित्यिक संरचना, अलंकार, छन्द, शैली, ध्वनि, व्यञ्जना और अन्य शास्त्रीय तत्त्वों के विशेष ज्ञान के कारण काव्य के उन पक्षों का आस्वादन कर सकता है जिन्हें सामान्य पाठक सम्भवतः न देख सके। इस स्तर पर काव्य केवल भावनात्मक अनुभूति नहीं रह जाता, अपितु बौद्धिक और शास्त्रीय परीक्षण का भी विषय बनता है।

लोकास्वाद्य काव्य

अभिराज की आधुनिकता का सर्वाधिक उल्लेखनीय संकेत 'लोकास्वाद्य' काव्य में दिखाई देता है। वे साहित्य को केवल संस्कृतज्ञों अथवा विशिष्ट सहृदय समुदाय की सम्पत्ति नहीं मानते। सामान्य लोक भी काव्य का आस्वादन कर सकता है। वह सम्भवतः 'ध्वनि', 'वक्रोक्ति', 'रीति' अथवा 'औचित्य' जैसे शास्त्रीय पदों को न जानता हो, किन्तु किसी मार्मिक गीत, कविता अथवा कथा से गहरे स्तर पर प्रभावित हो सकता है। इस स्थापना के माध्यम से अभिराज साहित्यिक आस्वाद का लोकतन्त्रीकरण करते हैं। काव्य शास्त्रज्ञ के लिए भी है, संवेदनशील सहृदय के लिए भी और सामान्य समाज के लिए भी।

अभिराज के काव्यस्वरूप में परम्परा और आधुनिकता का समन्वय

अभिराज का सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान यह है कि वे संस्कृत काव्यशास्त्र की परम्परा का निषेध किए बिना उसके भीतर आधुनिकता के लिए स्थान निर्मित करते हैं। भामह से शब्दार्थ-साहचर्य, वामन से गुण और रीति की चेतना, आनन्दवर्धन से व्यञ्जना एवं सहृदयता, कुन्तक से अभिव्यक्ति की वैचित्र्यपूर्णता, मम्मट से समन्वित काव्यदृष्टि, विश्वनाथ से रस तथा जगन्नाथ से रमणीयता का सूत्र उनके चिन्तन की पृष्ठभूमि में देखा जा सकता है। किन्तु अभिराज इन सिद्धान्तों की केवल पुनरावृत्ति नहीं करते। वे प्रश्न करते हैं कि आधुनिक साहित्य की आवश्यकताओं के अनुरूप इन सिद्धान्तों को किस प्रकार पुनः व्याख्यायित किया जा सकता है। आधुनिक संस्कृत कविता में मुक्तछन्द, ग़ज़ल तथा विभिन्न आधुनिक काव्यरूपों की उपस्थिति को स्वीकार करना इसी दृष्टिकोण का परिणाम है। इस प्रकार उनके लिए संस्कृत कोई ऐसी भाषा नहीं है जिसका साहित्य केवल प्राचीन रूपों में ही सम्भव हो।

आधुनिक काव्य-विधाओं की स्वीकृति

अभिराजयशोभूषणम् का एक विशिष्ट पक्ष यह भी है कि उसमें आधुनिक साहित्यिक विधाओं की उपेक्षा नहीं की गई। संस्कृत में आधुनिक ग़ज़ल, मुक्तछन्द और नवीन गीतात्मक रचनाओं के विकास ने परम्परागत काव्यशास्त्रीय वर्गीकरण के सामने नई चुनौतियाँ उत्पन्न की थीं। अभिराज का दृष्टिकोण इस प्रश्न पर खुला और विकासशील है। यदि किसी रचना में काव्यत्व के आवश्यक सौन्दर्यात्मक तत्त्व उपस्थित हैं तो केवल इसलिए उसे काव्य की परिधि से बाहर नहीं किया जा सकता कि उसका रूप प्राचीन ग्रन्थों में वर्णित नहीं था। यह स्थापना साहित्यिक परम्परा के जीवन्त स्वरूप की पुष्टि करती है। परम्परा तभी जीवित रहती है जब उसमें नए अनुभवों को आत्मसात् करने की क्षमता हो।

© Author(s). This work is peer-reviewed, openly published, and permanently archived
This article is openly accessible and reusable with proper attribution.

काव्य और लोक का सम्बन्ध

अभिराज की 'लोकास्वाद्य' अवधारणा का व्यापक सामाजिक अर्थ भी है। साहित्य का अन्तिम सम्बन्ध मनुष्य से है। यदि काव्य केवल विद्वानों के छोटे समुदाय तक सीमित हो जाए तो उसकी सामाजिक प्रभावशीलता संकुचित हो सकती है। परन्तु लोकाभिमुखता का अर्थ साहित्यिक स्तर का ह्रास नहीं है। अभिराज का त्रिविध विभाजन यह नहीं कहता कि लोकास्वाद्य काव्य सहृदयास्वाद्य अथवा कोविदास्वाद्य काव्य से निम्नतर है। वस्तुतः ये आस्वाद के विभिन्न स्तर हैं। एक ही उत्कृष्ट काव्य सामान्य पाठक को भावनात्मक स्तर पर प्रभावित कर सकता है, सहृदय को उसकी व्यंजना का अनुभव करा सकता है और कोविद को उसकी तकनीकी संरचना में विशेष सौन्दर्य दिखाई दे सकता है। इस दृष्टि से अभिराज का वर्गीकरण कठोर सामाजिक वर्गीकरण न होकर पाठकीय ग्रहणशीलता की बहुस्तरीय संरचना है।

काव्यप्रयोजन और यश

अभिराज के काव्यलक्षण में—

"परत्रेह च निर्व्याजं यशोऽवाप्तिप्रयोजनम्"

कहकर यश को काव्य के प्रयोजन से सम्बद्ध किया गया है।

प्रथम दृष्टि में यह प्रश्न उठ सकता है कि यदि काव्य 'स्वभावज' है तो उसका प्रयोजन यश कैसे हो सकता है। किन्तु यहाँ सृजन का कारण और सृजन का फल पृथक् रूप से समझना अपेक्षित है। कवि अपनी स्वाभाविक प्रतिभा और आन्तरिक सृजनात्मक आवश्यकता से काव्य रच सकता है, किन्तु उत्कृष्ट काव्य के परिणामस्वरूप उसे यश की प्राप्ति होती है। भारतीय साहित्यिक परम्परा में कालिदास, भारवि, माघ, भवभूति और बाण आदि कवियों की चिरस्थायी प्रतिष्ठा इस अर्थ में काव्य द्वारा प्राप्त यश का उदाहरण है। अभिराज द्वारा 'इह' और 'परत्र' दोनों का संकेत वस्तुतः यश की कालातीतता को भी अभिव्यक्त करता है। कवि का शरीर समाप्त हो सकता है, किन्तु उसकी श्रेष्ठ रचना साहित्यिक स्मृति में उसे जीवित रखती है।

अभिराज के काव्यस्वरूप की समीक्षात्मक परीक्षा

समन्वयात्मकता : वे किसी एक तत्त्व को काव्य की सम्पूर्ण सत्ता नहीं मानते। काव्य शब्द, अर्थ, रस, गुण, अलंकार, प्रतिभा और नवोन्मेष की परस्पर सम्बद्ध कलात्मक संरचना है।

लोकोत्तरता और रसगर्भता का सामंजस्य : काव्य को सामान्य व्यवहार से अलग करने के लिए केवल अलंकारिक चमत्कार पर्याप्त नहीं है। उसमें भावात्मक एवं आस्वादात्मक शक्ति भी होनी चाहिए।

नवीनता की स्वीकृति : काव्यशास्त्र का कार्य साहित्य को प्राचीन नियमों में बाँधना नहीं, बल्कि उसकी रचनात्मक प्रक्रिया को समझना है। आधुनिक विधाओं की स्वीकृति इसी व्यापक दृष्टि का परिणाम है।

© Author(s). This work is peer-reviewed, openly published, and permanently archived
This article is openly accessible and reusable with proper attribution.

आस्वादक की भूमिका का विस्तार : सहृदयास्वाद्य, कोविदास्वाद्य तथा लोकास्वाद्य के माध्यम से अभिराज काव्य की सम्पूर्णता में पाठक की भूमिका को प्रतिष्ठित करते हैं।

तथापि उनकी स्थापनाओं को आलोचनात्मक दृष्टि से देखने पर कुछ प्रश्न भी उत्पन्न होते हैं। 'लोकोत्तरता' की संकल्पना अत्यन्त व्यापक है। यदि उसकी स्पष्ट व्याख्या न की जाए तो यह व्यक्तिनिष्ठ कसौटी बन सकती है। जो अभिव्यक्ति किसी पाठक को असाधारण प्रतीत होती है, वह दूसरे को सामान्य लग सकती है। इसी प्रकार सहृदय, कोविद और लोक के बीच स्पष्ट सीमाएँ निर्धारित करना सम्भव नहीं है। एक व्यक्ति एक साथ सामान्य पाठक, विद्वान् और संवेदनशील सहृदय हो सकता है। अतः इस त्रिविध वर्गीकरण को व्यक्तियों के स्थायी वर्ग के रूप में नहीं, बल्कि **आस्वाद के विभिन्न स्तरों** के रूप में ग्रहण करना अधिक समीचीन है। यही आलोचनात्मक पुनर्पाठ अभिराज के सिद्धान्त की उपयोगिता को कम नहीं करता, बल्कि उसकी व्याख्यात्मक सम्भावनाओं को और व्यापक बनाता है।

आधुनिक संस्कृत काव्यशास्त्र में अभिराजयशोभूषणम् का स्थान

आधुनिक संस्कृत काव्यशास्त्र का विकास परम्परा के निषेध से नहीं, बल्कि उसके पुनर्पाठ से सम्भव हुआ है। आधुनिक संस्कृत विद्वानों ने प्राचीन काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तों के साथ आधुनिक साहित्यिक अनुभवों का संवाद स्थापित किया है। अभिराजयशोभूषणम् इसी प्रक्रिया का एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसकी विशेषता यह है कि इसमें काव्यशास्त्र को केवल इतिहास के रूप में प्रस्तुत नहीं किया गया, बल्कि एक जीवित अनुशासन के रूप में विकसित करने का प्रयास किया गया है। ग्रन्थ का आधुनिक संस्कृत के विश्वविद्यालयीय पाठ्यक्रमों में अध्ययन किया जाना भी उसकी समकालीन उपयोगिता को प्रमाणित करता है। अभिराज की काव्य-दृष्टि हमें यह समझने में सहायता करती है कि संस्कृत काव्यशास्त्र की प्राचीन शब्दावली आज भी अर्थवान् हो सकती है, बशर्ते उसका प्रयोग बदलते साहित्यिक परिवेश के प्रति संवेदनशील होकर किया जाए।

निष्कर्ष

अभिराजयशोभूषणम् में काव्यस्वरूप का समीक्षात्मक अनुशीलन यह स्पष्ट करता है कि आचार्य अभिराज राजेन्द्र मिश्र का काव्यशास्त्रीय चिन्तन भारतीय काव्यशास्त्र की परम्परा और आधुनिक रचनात्मकता के बीच एक महत्त्वपूर्ण सेतु है।

उनका काव्यलक्षण शब्दार्थ की संयुक्त सत्ता को स्वीकार करते हुए उसे लोकोत्तरता, रसगर्भता, स्वभावज प्रतिभा और यश जैसे तत्त्वों से सम्बद्ध करता है। इस प्रकार वे काव्य को केवल भाषिक संरचना नहीं, बल्कि सर्जनात्मक, सौन्दर्यात्मक और सामाजिक अनुभव के रूप में देखते हैं।

अभिराज का 'रसगर्भ' पद विशेष महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यह रस को काव्य की अन्तर्निहित आस्वादात्मक सम्भावना के रूप में ग्रहण करता है। 'लोकोत्तरता' सामान्य जीवनानुभव के कलात्मक रूपान्तरण को व्यक्त करती है और 'स्वभावजता' कवि-प्रतिभा की मूलभूत भूमिका को प्रतिष्ठित करती है। उनकी सर्वाधिक उल्लेखनीय स्थापनाओं में सहृदयास्वाद्य, कोविदास्वाद्य और लोकास्वाद्य काव्य का त्रिविध वर्गीकरण है। इससे काव्य की सत्ता रचनाकार और रचना से आगे बढ़कर पाठक तक पहुँचती है। साहित्य का आस्वाद केवल शास्त्रज्ञ का अधिकार नहीं रहता, बल्कि सामान्य लोक भी उसकी परिधि में प्रतिष्ठित होता है। आधुनिक काव्य-विधाओं के प्रति अभिराज की स्वीकारात्मक दृष्टि यह प्रमाणित करती है कि वे संस्कृत साहित्य को किसी ऐतिहासिक सीमा में बन्द नहीं देखते। उनके लिए परम्परा गतिशील है और काव्य निरन्तर नवनिर्माणशील प्रक्रिया।

© Author(s). This work is peer-reviewed, openly published, and permanently archived
This article is openly accessible and reusable with proper attribution.

अतः अभिराजयशोभूषणम् की महत्ता केवल इस बात में नहीं है कि उसमें काव्य का एक नवीन लक्षण प्रस्तुत किया गया है, बल्कि उसकी वास्तविक विशेषता **शब्द और अर्थ, शास्त्र और सृजन, रस और नवोन्मेष, सहृदय और लोक तथा परम्परा और आधुनिकता के मध्य समन्वय** स्थापित करने में है। इस दृष्टि से अभिराजयशोभूषणम् आधुनिक संस्कृत काव्यशास्त्र की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है और उसका काव्यस्वरूप सम्बन्धी चिन्तन समकालीन साहित्यालोचना के लिए भी पर्याप्त प्रासंगिकता रखता है।

सन्दर्भ-सूची

1) अभिराज राजेन्द्र मिश्र, अभिराजयशोभूषणम्, इलाहाबाद : वैजयन्त प्रकाशन, 2006; साथ ही सन्दीप कुमार द्विवेदी, "अभिराजयशोभूषणम् : एकं अभिनवं काव्यशास्त्रम्", शोधशौर्यम इंटरनेशनल साइंटिफिक रेफरीड रिसर्च जर्नल, खण्ड 2, अंक 2, 2019, पृ. 262–272।

2) भामह, काव्यालंकार, प्रथम परिच्छेद, कारिका 16 — "शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्।"

3) दण्डी, काव्यादर्श, प्रथम परिच्छेद।

4) वामन, काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, 1.2.6 — "रीतिरात्मा काव्यस्य।"

5) आनन्दवर्धन, ध्वन्यालोक, प्रथम उद्योत; ध्वनि को श्रेष्ठ काव्य की प्रधान सत्ता के रूप में प्रतिपादित किया गया है

6) कुन्तक, वक्रोक्तिजीवितम्, प्रथम उन्मेष।

7) मम्मट, काव्यप्रकाश, प्रथम उल्लास; काव्य के शब्दार्थ, गुण, दोष तथा अलंकार सम्बन्धी विवेचन।

8) विश्वनाथ कविराज, साहित्यदर्पण, प्रथम परिच्छेद, कारिका 3 — "वाक्यं रसात्मकं काव्यम्।"

9) पण्डितराज जगन्नाथ, रसगङ्गाधर, प्रथम आनन — "रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्।"

10) दिल्ली विश्वविद्यालय, संस्कृत विभाग, एम.ए. संस्कृत पाठ्यक्रम, आधुनिक संस्कृत काव्यशास्त्र सम्बन्धी पाठ्यपत्र में अभिराजयशोभूषणम् का समावेश।

11) अभिराज राजेन्द्र मिश्र, अभिराजयशोभूषणम्, पूर्वोक्त; ग्रन्थ की पाँच उन्मेषात्मक संरचना।

12) वही, परिचयोन्मेष, कारिका 34 — "काव्यं लोकोत्तराख्यानं रसगर्भस्वभावजम्। परत्रेह च निर्व्याजं यशोऽवाप्तिप्रयोजनम्॥"

13) पण्डितराज जगन्नाथ, रसगङ्गाधर, प्रथम आनन।

14) विश्वनाथ कविराज, साहित्यदर्पण, प्रथम परिच्छेद।

15) मम्मट, काव्यप्रकाश, प्रथम उल्लास; राजशेखर, काव्यमीमांसा, कवि-प्रतिभा, व्युत्पत्ति तथा अभ्यास सम्बन्धी विवेचन।

16) राजशेखर, काव्यमीमांसा; प्रतिभा एवं कवि की सर्जनात्मक शक्ति सम्बन्धी विवेचन।

17) अभिराज राजेन्द्र मिश्र, अभिराजयशोभूषणम्, परिचयोन्मेष, कारिका 38 — "काव्यं सहृदयास्वाद्यं कोविदास्वाद्यमेव च। लोकास्वादमिति ख्यातं त्रिविधं रोचते मम॥"

18) आनन्दवर्धन, ध्वन्यालोक तथा अभिनवगुप्त कृत लोचन; सहृदय एवं काव्यास्वाद सम्बन्धी विवेचन।

© Author(s). This work is peer-reviewed, openly published, and permanently archived
This article is openly accessible and reusable with proper attribution.